पुस्तक के पन्नों से 11

प्राथमिक शाला में शिक्षक*

गिजुभाई बधेका

शिक्षा के यथार्थ को भेदने में सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् गिजुभाई का कोई सानी नहीं। वे अध्यापक की लाचारी को जानते थे और व्यवस्था की क्रूरता को छिपाने की उन्हें ज़रूरत न थी। स्कूल की मरुभूमि में बच्चे की यातना उनसे न देखी गई और यही विवशता उनके शैक्षिक प्रयासों और लेखन का स्रोत बनी। गिजुभाई ने शिक्षा संबंधी अनेक किताबें लिखी हैं, जिनका हिंदी अनुवाद भी हुआ है। इन्हीं में से एक किताब है- प्राथमिक शाला में शिक्षक। यह पुस्तक मोंटेसरी बाल शिक्षण समिति राजलदेसर (चूरू) से प्रकाशित है। इस किताब का मूल्य तीस रुपये है। ***'प्राथमिक शाला में शिक्षक'*** *से कुछ लेख नीचे दिए जा रहे हैं।*

फ़ुर्सत में करने के काम

गाँव के अध्यापकों को ज़ाहिर तौर पर फुर्सत रहती है। अगर शहर के अध्यापक मिथ्या दौड़-भाग और झँझटों से स्वयं को बचा सकें तो वे भी फुर्सत प्राप्त कर सकते हैं। अवकाश या फुर्सत के इस समय को हमें अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने में लगाना चाहिए। सपने पालने से आर्थिक हालत सुधरने वाली नहीं। इसका एक ही उपाय है और वह है कोई-न-कोई उद्योग करना। शहर का अध्यापक शिक्षाशास्त्र में अपने अध्ययन को बढ़ा कर शिक्षण विषय में पारंगत होने का उद्यम करे तो एक लेखक या व्याख्याता के रूप में वह भविष्य में अपनी प्रतिष्ठा अर्जित कर सकता है। शहर का अध्यापक अपने अवकाश के समय में व्यापारी का हिसाब-किताब लिखने का काम सँभालता है, तो वह उसे शोभा नहीं देगा। हाँ, शहर के अलग-अलग पुस्तकालयों में वह ग्रंथपाल का काम संभालने का काम कर सकता है। एक काम यह भी किया जा सकता है कि अध्यापक अच्छे-भले अखबार पढ़कर सुनाएँ और उसके लिए पारिश्रमिक अर्जित करें। इस समय अखबार पढ़कर सुनाने वाले लोग कमाई कर सकते हैं, यह सर्वविदित बात है। इसके अलावा शिक्षक अक्षरशाला चला कर उस सेवा के बदले थोड़ा-बहुत पारिश्रमिक प्राप्त कर सकते हैं। श्रेष्ठ अध्यापक अगर चाहें तो सर्व-साधारण के लिए सुसंस्कार की, सुशिक्षण और सुवाचन की कक्षाएँ लगा सकते हैं। कोई अध्यापक लोकगीत गाने की अपनी कला बढ़ा कर निजी या सार्वजनिक रूप में उनके प्रदर्शन

* पुस्तक *'प्राथमिक शाला में शिक्षक'* मोंटेसरी-बाल-शिक्षण-समिति, राजलदेसर चूरू, 2006 से साभार

करके दो पैसे कमा सकता है, तो कोई समाज के छोटे-बड़े सभी लोगों को कहानियाँ सुनाकर कुछ पैसे कमा सकता है। अध्यापक की मर्यादा में आने वाले किसी भी विषय में अध्यापक को निष्णात होना चाहिए, लोग अपने आप उसकी उपयोगिता को स्वीकार करेंगे और उसका पारिश्रमिक देंगे।

दो-चार अध्यापक मिलकर विद्यार्थियों के लिए स्वदेशी चीज़ों का भंडार खोल सकते हैं, बाल-साहित्य प्रकाशन का सहकारी मंडल चला सकते हैं, विद्यार्थियों को भौगोलिक प्रवास पर ले जा सकते हैं, अच्छे-अच्छे प्रदर्शन आयोजित करके विद्यार्थियों की ज्ञान-वृद्धि कर सकते हैं। ये सब काम उद्योग की दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से सोच-विचार कर किए जाएँ, तो दो पैसे कमाये जा सकते हैं।

बच्चों को अनेक तरह की सेवा की ज़रूरत है, अध्यापकगण उन्हें मदद करके पारिश्रमिक के वाजिब अधिकारी बन सकते हैं।

गाँव में शहर वाले काम-धँधे हो नहीं सकते। फिर भी गाँव का अध्यापक अपना दिमाग लगा सकता है, अगर वह गाँव की तथा आस-पास की परिस्थिति का अच्छा अध्ययन करके लोगों को सच्ची सलाह देने लगे तो लोग उसे इसके बदले में पारिश्रमिक दिए बिना नहीं रहेंगे। अध्यापक स्वयं भी फुर्सत के समय में ग्रामीण उद्योग शुरू कर सकता है। अगर वह मेहनत करे और खेत जोते तो दो-एक मन अनाज उगा सकता है, छोटी-सी बाड़ी में साग-सब्ज़ी लगाकर अपना खर्चा निकाल सकता है, या पूरे वर्ष थोड़ी-थोड़ी कताई भी करना शुरू करे तो अपने परिवार को बिना पैसे पहना-ओढ़ा सकता है।

मनुष्य में एकमात्र बुद्धि एवं हृदय की शुद्धि होनी चाहिए-इसी की आज ज़रूरत है। यह भावना शिक्षक में अवतरित हो, ऐसी कामना है।

बाल मंदिर के शिक्षकों से

अपने कपड़े साफ-सुथरे रखें। बाल, हाथ, मुँह, आँख और कान स्वच्छ रखें। नखों को न बढ़ने दें।

चेहरे पर हमेशा प्रसन्नता रखें। यह प्रसन्नता आंतरिक प्रसन्नता की प्रतिच्छाया स्वरूप होनी चाहिए, बनावटी हर्गिज़ नहीं। हमें बच्चों को ढोंगी नहीं बनाना है। शांति और गंभीरता के भाव प्रसन्नता के विरोधी नहीं होते। ये दोनों भाव शिक्षक के चेहरे पर स्पष्ट रूप से दिखने चाहिए।

जिसे नाराज़ होने की आदत हो, जो क्रोध में भर आता हो, उसे बार-बार आइने में अपना चेहरा नहीं देखना चाहिए। आँखें फटी हुई होना, भौंहे तनी हुई होना, होंठ कसे हुए होना और बाल खड़े होना नाराज़गी व क्रोध के लक्षण हैं। प्रसन्नता या अप्रसन्नता, खुशी या क्रोध छिपे नहीं रहते। मनुष्य का चेहरा इन सब भावों का प्रामाणिक आइना है। क्रोधी अध्यापक से विद्यार्थी भी क्रोध की ही शिक्षा लेता है। हृदय में छिपा कर रखे गए क्रोध को बच्चे न जाने कैसे समझ लेते हैं। क्रोध से भरा हुआ व्यक्ति शिक्षण के काम में असमर्थ सिद्ध होता है। उसकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती, बौद्धिक शक्ति विकृत हो जाती है।

बच्चों को पीटना, उसे चुप करना, एक स्थान से उठाकर इच्छा के विरुद्ध दूसरे स्थान

पर ले जाना, उसकी माँग को स्वीकार न करना, कुछ छीन लेना आदि-आदि हरकतें क्रोध के कारण बार-बार घटित होती हैं। ये सब क्रोध के बाहरी लक्षण हैं। उक्त स्थितियों में शिक्षण की अनिवार्यता से भी कुछ बातें घटित हो सकती हैं, पर फिर भी क्रोध की उनमें गुंजाइश अवश्य रहती है।

जब बच्चे को कोई सवाल न आए तो क्रोध आता है, जब बच्चा शिक्षक की समझ से शैतानी करता है तो क्रोध आता है, जब वह सोचे मुताबिक काम नहीं करता तो क्रोध आता है जब बच्चा काम नहीं करता बल्कि रोता है तब क्रोध आता है।

होना यह चाहिए कि जब बच्चे को कोई सवाल न आए तो उसका दोष नहीं ढूँढ़ें। ऐसी स्थिति में शिक्षाशास्त्र की पुस्तकें टटोल कर कोई समाधान ढूँढना चाहिए। स्वस्थ बच्चे कभी ऊधम नहीं मचाते। बच्चे के वे सारे कार्य, जो नीति - सम्मत हों और सामाजिक व्यवस्था के विपरीत न हों, उसके हित के कार्य हैं, भले ही वे हमें शैतानी प्रतीत हो। शैतान बच्चे को डाक्टर के पास ले जाएँ, उसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें, आध्यात्मिक दृष्टि से उसके दोषों का निवारण करें। बच्चे हमारे सोचे अनुसार काम करें ही, ऐसे आत्यंतिक विचार को हमें छोड़ देना चाहिए। नीति एवं समाज व्यवस्था की मर्यादा में रहते हुए बच्चे अपनी मर्ज़ी का काम करें। कोई बच्चा शिक्षक को अपमानित करने जैसा आचरण करता है, यह बात भी हम लोग ही मान लेते हैं, जबकि यह बात न तो बच्चे के मन में आती है न ही किसी और के। अगर मिलने वाले लोग आ जाएँ और बच्चा गंदा मलिन नज़र आए तो इसकी परवाह भी नहीं करनी चाहिए। लेकिन हाँ, अगर काम करने के बजाय बच्चा भटकने लग जाए तो हमें सोचना होगा कि उसे ऐसा काम दिया जाए, जो वह करना चाहता है। अन्यथा हमें यही मान लेना चाहिए कि भटकने का काम ही उसके विकास में अत्युपयोगी है।

बच्चे से मार-पीट हर्गिज़ न की जाए और न ही उसे डाँटा धमकाया जाए। 'वैसा करेगा तो अमुक चीज़ नहीं दी जाएगी या ऐसा हो जाएगा।' ऐसे वचन कहना भी एक तरह से बच्चे को सज़ा देना ही है। उसकी इच्छा के विरुद्ध रोकना, उसका हाथ पकड़ कर बिठाना, ज़ोर से उसको दबाना, उसे उठा कर गिराना या जबरदस्ती धक्का देना, ये सब सज़ा देने के तौर-तरीके ही हैं। आँखें दिखाना,भौंहें चढ़ा कर देखना, नाक पर अँगुली रख कर चुप कराना, ज़ोर का सीत्कार करना, रौबीली आवाज़ में गुर्राना, आदि भी सज़ा की ही पद्धतियाँ हैं। बाल मंदिर के बच्चे इस प्रकार की सज़ाओं से मुक्त रखे जाने चाहिए।

दबाकर राज्यों तक को नहीं रखा जा सकता, तो भला बाल मंदिर के बच्चे दबाव में कैसे पढ़ेंगे? हमें बाल मंदिर से दंड और सज़ा को मिटा कर ही संसार से हिंसा, त्रास एवं अत्याचारों को स्थायी रूप से समाप्त करना है। हमें इस बात की चिंता करनी चाहिए कि बच्चे को किसी तरह की सजा देंगे तो हम उसके प्रेम पात्र हर्गिज़ नहीं रह सकेंगे। आने वाला युग स्वराज्य युग होगा। जब हम उसमें हिंसा नहीं

चाहते तो शाला में यह क्योंकर रहेगी? क्योंकर रहनी चाहिए? जब भी कभी हमारे मन में बच्चे पर किसी तरह का दबाव डालने का ख्याल आए तो हमें तत्काल यह बात सोचनी चाहिए कि हम कितने बलवान हैं और बच्चा कितना निर्बल! निर्बल को दंड देना हिंसा से भी बदतर है। बच्चे को सज़ा देकर हम आने वाली पीढी के मूल में हिंसा का जल ही सीचेंगे।

बच्चे को दंड देकर हम अपनी ही असंयमी वृत्ति को प्रदर्शित करते हैं। सोचने की बात है कि हमारा संयम दंड देने में है या दंड न देने के बजाय अपने आप को संयमित रखने में! संयम अच्छा है या असंयम? संयम रखने में भला है या असंयम रखने में? बच्चे को दंड देने में हमारी राक्षसी वृत्ति का अपने आप प्रदर्शन हो जाता है। यदि हमें तय करना है तो हम बच्चे को न मारना, न दबाना सीखें। हर कोई यही कहता है कि दंड दिए बिना बच्चे को रास्ते पर लाना कठिन काम है। भला आसान मार्ग अपनाने में तपश्चर्या है या कठिन में? दंड देने का पाप तो सामने दिख जाता है, पर दंड न देने का पुण्य-फल तो भलाई होने पर ही समझ में आता है। भगवान के पावन एवं निर्दोष स्वरूप सदृश बच्चे के परिचय को हम दंड के विचार मात्र से दूषित न करें। भलाई के शिखर चढ़ने वाली सीढ़ी के सबसे ऊँचे सोपान पर है बाल मंदिर के बच्चों का शिक्षण! गुलाब की कली को कुचलने से, उस पर आघात करने से तो गुलाब खिलेगा नहीं, न ही हम उसकी सुगंध पा सकेंगे। ऐसे ही बच्चे के साथ मारपीट करने से हम उसे मनुष्य नहीं बना सकेंगे। ऐसा करने से उसमें से मनुष्यता की सुगंध नहीं फूट सकेगी।

अगर हमारी भूल-चूक से कभी बच्चों की मार पिटाई हो जाए, तो क्या करना चाहिए?- तपश्चर्या की जाए। उपवास करने से, भोग का त्याग करने से, हाथ मलने से, सिर धुनने से पश्चाताप किया जा सकता है। अगर पुरानी आदत की वजह से बच्चों पर गुस्सा आ जाए, उन पर हाथ उठ जाए, उनकी भावनाओं को दबा दिया जाए तो निराश होने की ज़रूरत नहीं है, संयम लाने की बार-बार साधना करो। मुमुक्षु को संयम के विरुद्ध संघर्ष करने में दुगना जोश चढ़ता है और बहुत मज़ा आता है।

अपने बचपन के दिनों को अगर याद करेंगे तो हम किसी से भी मार-पीट करना नहीं चाहेंगे। बच्चा अपने पूर्वजन्म के संस्कार लेकर जन्म लेता है। माता-पिता भी उसे उत्तराधिकार में बहुत सारे गुण-दोष प्रदान करते हैं। घर से भी उस पर अच्छे-बुरे अनेक प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। मनोवैज्ञानिक, शरीरवेत्ताओं और जीवशास्त्रियों का कहना है कि अपना शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास करने के लिए निरंतर संघर्ष करना है। बच्चे को सज़ा देकर भला उसके पूर्ववत् संस्कारों से मिले गुण-दोषों, परिवार के प्रभावों तथा बच्चे के स्वयं अपने विकास की स्वाभाविक वृत्ति को हम कैसे रोक सकेंगे?

बच्चे के शारीरिक रोगों के लिए दवा देकर इलाज करो, मानसिक रोगों के लिए मनोचिकित्सक के पास जाओ, अन्य रोगों के लिए शिक्षाशास्त्री की दृष्टि से बच्चे का

अवलोकन करो और उसके वाँछित विकास के लिए तदनुकूल वातावरण सृजित करो। पूर्वजन्मों के संस्कार लेकर आने वाले बच्चे अनेक बातों में एक-दूसरे से भिन्नता लिए होते हैं। प्रत्येक आत्मा की मूल अलग-अलग प्रकार की होती है। उसे अलग-अलग तरीकों से ही सुधारा जाता है।

शिक्षाविदों का कहना है कि आप शिक्षा देने की चाहे जैसी व्यवस्था रच दीजिए, बच्चे को दंड आदि देकर चाहे जितना दबा लीजिए, अपनी योजना के अनुरूप मार्ग पर ले जाने की चाहे जैसी कार्यनीति बना लीजिए पर बच्चा उसकी परवाह भी नहीं करेगा। वह उसमें से जब चाहेगा तब छूट निकलेगा और आगे बढ़ेगा। प्रत्येक आत्मा को इस संसार में जो-जो कार्य करने हैं, उन्हीं को पूरा करने के लिए वह प्रयत्न करेगी। आपकी सज़ा, आपकी शिक्षण योजना आदि उसे आगे नहीं ले जा सकेंगे, उल्टे उसके मार्ग में अवरोध ही डालेंगे।

ऐसे में अगर आप बच्चे के लिए कुछ कर सकते हैं तो उसके मार्ग को सीधा कीजिए, मार्ग के काँटे हटाइए, उसके मार्ग के आगे रक्षा के लिए बाड़ बना दीजिए, यानि कि उसके लिए अनुकूल वातावरण रचें, उसके विकास के लिए वाँछित जलवायु उपलब्ध कराएँ। बच्चे को कैसी जलवायु चाहिए, इसका अध्ययन कीजिए। माली पौधों को विकसित करना जानता है, जीवशास्त्री जीवों का लालन-पालन करना जानता है, तो हमें मनुष्यों का पोषण संवर्द्धन करना जानना चाहिए। इस विद्या को जान लेने में हमारा आधा शिक्षक दायित्व पूरा होता है और लगभग संपूर्ण काम पूर्ण होता है।

आप अक्षर ज्ञान और अंक ज्ञान की शिक्षा देने का मोह न रखें। सीखना तो प्राणी मात्र का कर्त्तव्य है, उसकी ज़रूरत है। पहले पहल हमें यह बात सीखने की है कि किस तरह की शिक्षा देने से मानवता का विकास होता है, अंक ज्ञान और अक्षर ज्ञान की बात इसके बाद की चीज़ है। मैं तो अंक ज्ञान और अक्षर ज्ञान का विरोधी हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि अमुक उम्र में बच्चा अंक और अक्षर सीखना चाहता ही है और इसीलिए बाल मंदिर में इसके शिक्षण की व्यवस्था है। अगर कोई बच्चा अंक ज्ञान लेने के लिए बाल मंदिर में नहीं आना चाहता है तो इसकी रत्ती भी चिंता न करें। अनभूखे बच्चे को खिलाना गलत बात है। भूख लगते ही बच्चा अपने आप बिना कहे खाने चले आता है। ऐसे ही ज्ञान की भी बच्चे को भूख लगती है।

अगर बच्चे को समाज के अंदर रखना है तो उसे समाज के वातावरण में ही रखना पड़ता है, उसे बोलना सिखाने के लिए भी वहीं रखना पड़ता है जहाँ समाज के लोग-बाग आपस में बोलते हैं। ठीक इसी तरह अगर बच्चे को अक्षर ज्ञान देना हो तो जहाँ अक्षर ज्ञान की ज़रूरत पड़ती हो, और जहाँ अक्षर ज्ञान का उपयोग होता हो, वहीं बच्चे को रखना पड़ेगा। तभी बच्चा अक्षर एवं अंक ज्ञान आसानी से सीख सकेगा। सोचने की बात है, बच्चे को चलना और बोलना सिखाने के लिए क्या कभी स्कूल की ज़रूरत पड़ती है? मात्र अक्षर ज्ञान और अंक ज्ञान बच्चे के जीवन की अनिवार्यता होनी चाहिए। अगर अनिवार्यता नहीं है तो उसे ये सब सिखाने के लिए खटपट करने की ज़रूरत नहीं

है। लेकिन अगर अनिवार्यता है तो वह बच्चा ज़रूर सीखेगा। अंक ज्ञान और अक्षर ज्ञान की तृषा तथा शिक्षण की व्यवस्था-स्वाभाविकता किस प्रकार के विकास से बच्चे में पैदा होती है, अगर यह बात आप जान लें तो हमें उसी के बारे में काम करने की बात सोचनी रहेगी। पर हमारा काम माली जैसा है, लेकिन महज़ माली जैसा ही नहीं। हमें पता है कि बीज के अनुरूप ही वृक्ष तैयार होगा, पर बीज के दोषों को दूर करना हमारा काम है। हमें बीज को सिर्फ अनुकूलता ही प्रदान नहीं करनी, अपितु सामाजिक और नैतिक वातावरण में उसे जीने योग्य भी बनाना है। इसीलिए हम दृष्टा और प्रेरक हैं।

शिक्षक की स्वीकारोक्ति

मैं एक शिक्षक हूँ। मैंने एक स्थान पर 'टीचर्स कन्फेशंस' नामक लेख का शीर्षक पढ़ा और मेरी इच्छा हो आई कि अपने कन्फेशंस कबूल तो करूँ?

वर्षों से मैं शिक्षण व्यवसाय में कार्यरत् हूँ। शिक्षक बनने की अर्हता प्राप्त करने के लिए मैंने किसी वक्त में शिक्षाशास्त्र एवं शिक्षण पद्धति का जो कुछ ज्ञान हासिल किया था, उसमें बहुत कम वृद्धि कर पाया हूँ।

मैं सार्वजनिक पुस्तकालयों में जाता हूँ, पर शिक्षा संबंधी पत्रों को शायद ही कभी हाथ लगाता हूँ। लाइब्रेरियन की इश्यू बुक पर नज़र डालता हूँ तो मेरे नाम पर चढ़े हुए कई ग्रंथ तो दिखते हैं, पर शिक्षा संबंधी एक भी ग्रंथ उनमें नहीं दिखता।

मेरी अध्ययन करने की ज़रूर आदत है। शुरू-शुरू के वर्षों में पाठ्यपुस्तकों और तत्संबंधी जानकारियाँ बढ़ाने में व्यस्त रहता था। अब तो मात्र कभी-कभार पाठ्यपुस्तक बदलती हैं, अत: सिर्फ उसे देखना ही काफ़ी होता है। मेरी अध्ययन परिधि में दैनिक व मासिक पत्रों के अलावा इधर-उधर की औपन्यासिक कृतियाँ हैं।

शाला समाप्ति के बाद शिक्षण-संबंधी बातचीत शायद ही कभी करता हूँ। किसी को डिसमिस करने की, किसी के प्रोमोशन की, फॉर्म देने की, परीक्षा की, उच्चाधिकारी की अथवा स्टाफ, बुकसेलर आदि-आदि की बातें मेरी चर्चा का मुख्य विषय होती हैं।

हम सभी शिक्षक बंधु अर्धअवकाश में चाय-पानी के लिए जब साथ-साथ मिलते बैठते हैं, तब बहुत सारे विषयों पर हमारे बीच बातचीत होती है; पर बच्चों को कैसे सिखाएँ, शिक्षण के उपकरणों और विद्यार्थियों आदि के संबंध में बातचीत नहीं होती और बातचीत का कोई प्रयोजन तक नहीं रहता।

शाला का समय निश्चित है। अभ्यास-क्रम स्थिर है। घंटी से समय बदलता जाता है और फिर बच्चों को परीक्षा के लिए तैयार किया जाता है। शिक्षण-पद्धति का क्रम बना हुआ है। विद्यालय जाता हूँ। रोजाना वाले पाठ पढ़ाता हूँ। कुछ युक्ति से, कुछ शक्ति से, कुछ प्रतिभा से और मुख्यत: विद्यालयी अनुशासन के नियमों से व्यवस्था बनाए रखता हूँ, और काम करता जाता हूँ।

किसी विषय को गहराई में उतरकर नहीं पढ़ाता। इसका कारण यह है कि परीक्षा के

लिए जितना सिखाना ज़रूरी है, उससे अधिक पढ़ाने को समय कम पड़ता है, विद्यार्थियों को बेकार की देर लगती है, और अधिकारी को भी बेकार का दिखावा करना पड़ता है।

विद्यार्थियों को मैं मात्र नाम से जानता हूँ या फिर इस तरह से कि अमुक-अमुक को पाठ याद है, अमुक-अमुक को नहीं। उनकी पारिवारिक-पृष्ठभूमि कैसी है?, मैत्री कैसी है?, मनोवृत्ति कैसी है?, आदि को लेकर मैं कुछ भी नहीं जानता। उनके और मेरे बीच नज़दीकी संबंध हैं भी नहीं। उनकी बुद्धि की तो कुछ जानकारी है मुझे, पर उनके हृदय के संबंध में मैं अज्ञात हूँ।

प्रथम कौन है और अंतिम कौन है, यह मैं देखता हूँ पर उनकी शारीरिक शक्ति एवं अशक्ति का मुझे अता-पता नहीं। जो विद्यार्थी काम करके ले आते हैं वे होशियार हैं और वे मुझे अच्छे लगते हैं; बाकी के मुझे बिल्कुल पसंद नहीं आते। उनका मेरे प्रति या मेरा उनके प्रति कोई विशेष प्रेम या अनुराग नहीं। ऐसे में हम परस्पर विश्वास तो पाएँगे ही कैसे? वे मुझसे डरते हैं, तो मैं उन पर अधिकार जताता हूँ।

विद्यालय छोड़ने के बाद किसी अपमान करने वाले विद्यार्थी को तो छोड़ दें, और शायद ही कोई याद आता होगा। वे अपने घर भले, मैं अपने घर। लेटे-लेटे उनके बारे में यह विचार ज़रूर आता है कि अब परीक्षा आने वाली है, फटाफट दोहराने का काम करा दूँ, इसलिए अर्धअवकाश में भी काम कराना है।

मैनें बच्चों के घर नहीं देखे, और अपना घर भी उन्हें नहीं दिखाया। ऐसा कोई संबंध मैंने बच्चों के साथ रखा नहीं।

मेरा सपना है कि प्रोमोशन पाते-पाते आचार्य बनूँ और नौकरी के वर्ष पूरे करके रिटायर होने पर पेंशन पाऊँ। मेरी वृद्धावस्था आने से पहले पाँच पैसे बचा कर अलग रखने की भी इच्छा है। तभी तो मैं ट्यूशनें भी करता हूँ।

मेरी इच्छा है कि जात-बिरादरी में ठीक-ठाक समझा जाऊँ, लड़कों-बच्चों को अच्छी तरह पढ़ा-लिखाकर काम पर लगा दूँ, और फिर शादी-ब्याह करके आराम की ज़िंदगी बिताऊँ।

इन सब के लिए काम करने की मेरी इच्छा है। आज शिक्षण का व्यवसाय भी मेरे लिए एक प्रवृत्ति है, एक काम है। ऐसे में शिक्षण का आदर्श, शिक्षण की परिवर्द्धित पद्धति से पढ़ाने का आग्रह, शिक्षा में नवाचार करने की उत्कंठा-ये सब मुझमें हैं भी नहीं, तो आएँगे कहाँ से! आज मेरी जो स्थिति है, वह मुझे अच्छी तरह समझा देनी चाहिए। मेरी अपनी हालत तो यह है, दूसरे शिक्षक बंधुओं की भी शायद ऐसी ही होगी।

❑❑❑